REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

''प्रकृति सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण और अज्ञेय का काव्य'

डॉ. कुसुम नेगी
हिन्दी विभाग , एस.एम.जे.एन.(पी.जी.) कॉलेज, हरिद्वार.

प्रस्तावना :–

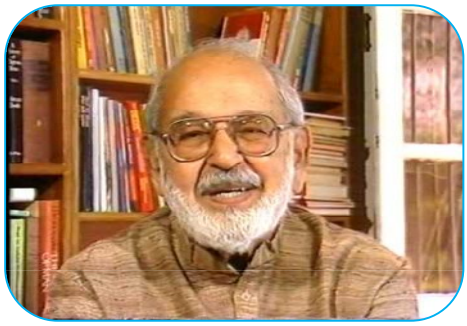

प्रकृति में हमारी सारी सृष्टि उत्पन्न होती है, और उसी में लीन भी हो जाती है। यह पुरातन से भी पुरातन है तथा नित नवीन भी है। मनुष्य इसी प्रकृति में अपना सम्पूर्ण जीवन जीता है। इसलिए प्रकृति से उसका रागात्मक सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। कोई स्वीकार करे या न करे लेकिन इस संसार की हर वस्तु तथा हर प्राणी इसी प्रकृति की क्रोड में अपनी जीवन प्रक्रिया से गुजर रहा है। फिर भी स्वभावतः कुछ मानव संवेदनशील और कुछ असंवेदनशील होते हैं, हर एक विशेषता, हर घटना, हर भाव को समझने की कोशिश करता है और दूसरा इन सबको परे रखता है। कवि संवेदनशील होने के कारण स्वयं को गम्भीर रूप से प्रकृति से जोड़ देता है। यह स्वाभाविक है क्योंकि वह अपनी संवदेनशीलता के कारण इस जगत के प्रत्येक पहलू को जानता व समझता है तभी वह अपनी कविताओं के माध्यम से जगत का स्वरूप और भी प्रत्यक्ष कर पाता है। कवि अज्ञेय की संवेदना भी प्रकृति से गहन रूप से जुड़ी हैं, उनके सौन्दर्य बोध, सत्यान्वेषण, आत्मबोध का एक मुख्य स्रोत प्रकृति ही है। अज्ञेय की प्रकृति चेतना का सम्बन्ध सौन्दर्य चेतना के साथ रहस्य चेतना से भी है। इसीलिए उनके प्रकृति बोध का आयाम बहुत विस्तृत है। प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानसिक व्यापारों का संश्लेषण, दृश्य के साथ अन्तदर्शन का संयोग, विराट के साथ लघु का मेल उनके प्रकृति बोध की अनन्य विशेषतायें हैं। अज्ञेय ने प्रकृति के माध्यम से 'सत्यम–शिवम्–सुन्दरम्' तीनों का एक साथ ही संधान कर लिया है।

अज्ञेय का बचपन खण्डहरों, वनों और पर्वतों में बिखरे पुरातत्वावशेषों के मध्य बीता है। उनके पिता पुरातत्व विभाग के कर्मचारी थे इसलिए उन्हें पुरातत्व अवशेषों की खोज में कई अलग–अलग जगहों पर जाना पड़ता था। अज्ञेय को भी उनके साथ जाने का मौका मिला और इस तरह वह प्रकृति के भिन्न–भिन्न रूपों से परिचित हुए। यही कारण है कि अज्ञेय में प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रति गहरा लगाव रहा है। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है, **''दुनिया में इतना कुछ देखने को पड़ा है। क्षण–क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश जिसे उसने आँख भर देखा। इसे देखने से उसको इतना अवकाश कहाँ कि वह निगाह अपनी ओर मोड़े। वह तो जितना कुछ देखता है उससे भी आगे बढ़ने की विवशता में देता है मन को दिलासा, पुनः आऊँगा–भले ही बरस दिन अगिनत युगों के बाद।''**[1] कवि प्रकृति के अथाह सौन्दर्य, समर्पण, दानशीलता, स्वतंत्रता, विकास प्रक्रिया, आदि विशेषताओं से प्रभावित थे। इसलिए वह जब भी प्रकृति में लीन होते थे तब उससे बाहर निकलना उन्हें गवारा नहीं था। प्रत्येक स्थानों की भिन्न–भिन्न विशेषताओं को देखकर उनका हृदय आनन्दित हो जाता है। लेकिन जब वहाँ से जाने का वक्त आता था तो न चाहते हुए भी उन्हें जाना पड़ता था इसलिए वह पुनः आने की बात कहते हैं। कवि ने प्रकृति को मानवीय व्यवहार की सजगता में

अंकित किया है जिससे प्रकृति के दृश्य कवियों के जीवन मर्म बन गये हैं। यह किताबी सम्बन्ध नहीं बल्कि जीवन का भोगा और परखा रूप है। **'हिन्दी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य'** के अन्तर्गत **'प्रकृति काव्यः काव्य प्रकृति'** निबन्ध में अज्ञेय ने प्रकृति सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट किया है, ''**साधारण बोलचाल में प्रकृति मानव का प्रतिपक्ष है अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है–वह सम्पूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है जो कि इन्द्रिय गोचर है–जिसे हम देख, सुन, छू सकते हैं और जिसका आस्वादन कर सकते हैं। अथवा यो कहें कि अपनी स्वस्थ अवस्था में साहित्य का प्रकृति बोध मानवेतर इन्द्रियगोचर, बाह्य परिवेश तक जाकर नहीं रुक जाता, क्योंकि साहित्यिक आन्दोलनों की अद्योगति में विकृति की ऐसी अवस्थायें आती रही हैं जब उनसे बाह्य सौन्दर्य के तत्वों के परिगणन को ही दृष्टि की इति मान लिया है।**''[2]

आज प्रकृति क्षेत्र की व्यापकता में मानव के बढ़ते समुदाय और विज्ञान के बढ़ते चरण ने पर्याप्त संकोच और न्यूनता उत्पन्न कर दी है। मनुष्य में प्रकृति के प्रति आदिम वासना के रूप में चला आ रहा है। नगरों में बसे जो देहाती होने से घबराते हैं वे भी अपने मकान में लॉन, दो–चार गमले, पालतू पशु–पक्षी, प्लास्टिक के चित्र, कागज के फूल पत्ती रखना चाहते हैं। यह उनका काल्पनिक प्रकृति प्रेम है। लेकिन जबसे विज्ञान जगत, यंत्र युगीन सभ्यता को बढ़ावा दे रहा है तब से व्यक्ति क्षणिक सुख–सुविधाओं के लिए नगरीय सभ्यता में फंसता चला जा रहा है और इसी कारण प्रकृति के साथ उनका सम्बन्ध कम होता जा रहा है। जिन खेतों को प्रकृतिस्थ बैल–भैंसों से किसानों द्वारा जोता जाता था उन्हें अब पैट्रोल वाले ट्रेक्टरों से उधेड़ा जा रहा है। जिन खेतों में गेहूँ, ज्वार, अरहर, मटर, सरसों, अलसी आदि फसलें अपनी विकसित अवस्था में थी वहाँ अब कमरकटले, कददू, सूरजमुखी आदि ने अपना साम्राज्य फैला दिया है। बड़े–बड़े पेड़ों व वनों को काटकर बड़ी–बड़ी बिल्डिगें, फैक्ट्ररियाँ रासायनिक रिसाव की लाइनें लगायी जा रही हैं, जिसका कारण विभिन्न बीमारियाँ हैं, जो अनेक रूपों में प्राणी जगत का नाश कर रही हैं। पहले मानव जाति को प्रकृति से पूर्ण लगाव था लेकिन इस यांत्रिक दौर में वह लगाव कहीं दिखायी नहीं देता। आधुनिक युग के इस दौर में अज्ञेय एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रकृति के मर्म को समझा, इसलिए उनका प्रकृति के साथ प्रेम का सच्चा साहचर्य घटित होता है। कवि नगर के कोलाहल से भागकर प्रकृति में शरण चाहते हैं, कृत्रिमता से मुक्त सहज जीवन के वे आकांक्षी हैं। उनकी चर्चित कविता **'हरी घास पर क्षण भर'** में वे कहते हैं–

''**हो प्रकृतस्थः तनो मत कटी–छंटी उस बाड़ सरीखी,**
नमो, खुल खिलो सहज मिलो/अंतः स्मिअ, अंत–संयत हरी घास सी।
क्षणभर भुला सके हम/नगर की बैचेन बुदकती गड्ड–मड्ड अकुलाहट,
और न माने उसे पलायन/क्षणभर देख सकें आकाश, धरा, दूर्बा, मेघाली,
पौधे, लता दोलती, फूल, झरे पत्ते, तितली–भुनगे,
फुनगी पर पूछ उठाकर/इतराती छोटी सी चिड़िया''[3]

इसीलिए कवि के काव्य चित्रण में पर्वत आया तो मिट्टी छूटी नहीं, छलांग मारता हिरण और टांगों से पूछ दबाए कुत्ता, सागर के साथ बूंद, नदी के साथ द्वीप, मछली का उछलना और गधे का स्थिर रहना आदि। प्रकृति के ऐसे रूप अज्ञेय के काव्य में ही प्राप्त हो सकते हैं। उनकी कम ही रचनायें होती हैं जिनमें प्रकृति के बाह्य रूप का आलम्बनगत चित्रण होता है, हृदय की किसी चित्तवृत्ति या मनोविकार के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। उनकी **'अरी ओ–करुणा प्रभामय'** में ''**रात में गाँव**', '**धूप**', '**बसन्त**', '**पगडंडी**', '**पूनो की सांझा**', '**नदी तट**', '**एक चित्र**', '**चिड़िया की कहानी**', '**सागर का भोर**' आदि कविताएँ इसी विशेषता पर आधारित हैं। कवि की **'अन्तिम आलोक'** कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है–

''सन्ध्या की किरण–परीने/उठ अरुण पंख दो खोले
कम्पित कर गिरि–शिखरों के/उर छिपे रहस्य टटोले।
देखी उस अरुण किरण ने/कुल पर्वतमाला श्यामल
बस एक श्रृंग हिम का/था कम्पित कंचन झलमल।''[4]

हिन्दी साहित्य में छायावादी युग प्रकृति चित्रण का सबसे अधिक व विस्तृत भण्डार है। उनकी प्रकृति चित्रण की स्वच्छन्द विचारधारा व संवेदना को अज्ञेय ने उत्कृष्ट बताया है। छायावादी कवियों ने प्रकृति की प्रत्येक स्थिति को रूप प्रदान करके उसे मानवीयता से जोड़ दिया था इसलिए उनकी वैयक्तिक अनुभूति, और प्रकृति के साथ गहन लगाव को अज्ञेय ने सहस्र स्वीकार किया और प्रकृति को सर्वांगीण महत्व देते हुए उसे अपने काव्य में उतारने के साथ स्वयं भी उसी में तन्मय हो गये। यही कारण है कि वे प्रकृति के प्रति रागात्मक अनुभव अनुभूत करते हैं। जिसकी तीव्रता उनके काव्य में दिखती है। अज्ञेय की कविता '**अपना ज्ञान**' में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है–

''कुसुम का रस परिपूरित हृदय मुधप का लोलुपतामय स्पर्श
इसी से कांटों का काठिन्य, इसी में स्फुट कलियों का हर्ष
इसी में बिखरा स्वर्ण–पराग, इसी में सुरभित मन्द बतास
उर्मि–माला का पागल नृत्य, ओंस की बूंदों का उल्लास
विरहणि चकवी की क्रन्दना, परमृता–भाषित कोयल तान
इसी में अवहेला की टीस इसी में प्रिय का प्रिय आह्वान।''5

यहाँ अज्ञेय प्रेम, मिलन, जीवन के उल्लास के साथ विरह और मानव जीवन के कठिन पक्षों की बात करके प्रकृति को जीवन से पूर्णतः जोड़ देते हैं। सही रूप में कहें तो प्रकृति से बाहर मानव का अस्तित्व भी नहीं है। प्रकृति है तो वो हैं, अतः मानव को अन्तःकरण तक छूने की शक्ति प्रकृति में ही है। 'असाध्यवीणा' नामक कविता में कवि ने एक अति प्राचीन, विशाल वृक्ष की विराट कल्पना की है, जिसके कंधों पर बादल सोते थे और जिसके कानों में पर्वत के उतुंग शिखर रहस्यमयी कहे जाते हैं, 'असाध्यवीणा' इस किरीटी तरु से गढ़ी गयी थी।

'वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी–तरु से इसे गढ़ा था
उसके कानों में हिम–शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे/उसकी करि–शण्डों–सी डालें
हिम–वर्षा से पूर वन–यूथों का कर लेती थीं, परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे''[6]

अज्ञेय ने यहाँ प्रकृति की सर्वांगीणता के प्रति अगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था प्रकट करते हुए उसके विविध रूपों की झाकियाँ अंकित की हैं। कवि को प्रकृति में चेतना का आभास मिला है जिसके कारण उन्हें कभी सागर मतियाता जान पड़ता है, पवन तरंग की पंखयुक्त वीणा पर उमंग से गाती हुई जान पड़ती है, तथा सागर का किनारा झूमता हुआ डगमगाता जान पड़ता है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण बड़ी तत्परता के साथ किया है। कवि ने सूनी साँझ का एक बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित किया है–

'सूनी–सी साँझ एक/दबे पांव मेरे कमरे में आई थी
मुझको वहाँ देख/थोड़ा सकुचाई थी/तभी मेरे मन में–
यह बात आई थी/कि ठीक है यह अच्छी है
उदास है पर सच्ची है/इसी की सांवली छाँह में कुछ देर रहूँगा

इसकी साँस की लहर पर बहूँगा/चुपचाप इसी के नीरत्व तलुओं की
लाल छाप देखता/कुछ नहीं कहूँगा।''[7]

यहाँ कवि ने प्रकृति को पूर्ण मानवीय रूप में चित्रित किया है। वह प्रकृति की यथार्थता से वाकिफ है, इसलिए वह उस यथार्थता में सुकून की सांस लेना चाहता है। मानव प्रकृति की ही देन है, इसलिए कवि को पूर्ण विश्वास है कि उसके कुछ न कहने पर भी प्रकृति उसके अन्तःकरण की भावनाओं को समझकर आत्मसात कर लेगी। प्रकृति के किसी भी रहस्य अथवा अकथ्य सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए कवि प्रकृति प्रतीकों का सहारा नहीं लेता है। प्रकृति सौन्दर्य उसे आनन्द देता है, जीवन देता है, उसकी सौन्दर्य दृष्टि प्रकृति के सुन्दर परिवेश को आनन्द के आवेग में चित्रित करती है–

'ओ पिया, पानी बरसा/घास हरी झुलसाती
मानिक के झूमर सी/झूमी मधु–मालती
झर पड़े जीते पीत अमलतास/चातकी की वेदना विरानी
बादलों का हाशिया है आस–पास/बीच कुंजी की डार कि
लिखी पांत काली बिजली की/आसाढ़ की निशानी/ओ पिया.....''[8]

प्रकृति और प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में ही देशीय, जातीय संस्कृति के उन्नत भावों की अभिव्यक्ति होती है। इन भावों को चित्रित करते हुए कवि के संस्कार मुखरित होकर सामने आते हैं। प्रकृति और प्रेम सम्बन्धी स्वस्थ रचनाओं में प्रयोगवादी कवि सम्पूर्ण भारतीय हैं। इसलिए उनकी कृतियों में संध्या, उषा, नदी, पर्वत विभिन्न ऋतुओं का भारतीय सौन्दर्य अमर हो गया है। दिन के आरम्भ को द्वार पर पड़े हल्दी रंग पत्र, धरती को सवत्सा कामधेनु के रूप में देखना, साँझ के बादलों को कपूर और गेरु की गाँठ के रूप में, नदियों को रंभाती हुई धेनुओं के रूप में, धूप को सूप में भरे कनक के दानों के रूप में देखना इनकी कविता की विशेषता है। अतः कवि के काव्य में लोक जीवन की सहज अभिव्यक्ति हुई है। अतः प्रकृति के साथ कवि का गहरा भावनात्मक लगाव है। स्वभावतः फूल सभी को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं, लेकिन अज्ञेय का उनके प्रति कुछ ज्यादा ही सिंचाव था। इसीलिए कवि अपने काव्य में बसन्त ऋतु का वर्णन बहुत ही रोचक ढंग से करते हैं। बसन्त ऋतु के आते ही पलाश के फूल अपनी छटा बिखेरते हैं। यहाँ तक कि तिरस्कृत बबूल पीत वसन में दमन उठते हैं। मदमस्त कोंपले ऋतुराज के स्नेह स्पर्श से लजाकर जाग जाती है और उधर पलाश उससे बाह भेंटने के लिए तिलमिला उठता है–

'प्रस्फुटन अभी नहीं लगी हुई है आस/मुक्त हो चले अशक्त शीत–बद्धदास।
मुक्त त्राण, सर्वप्राण चैत्र आ रहा/अंक भेंटने को तिलमिला उठे पलाश।''[9]

बसन्त का सौन्दर्य शिरीष के फूलों और कचनार की कलियों से और भी निखरने लगती है। वे पहले कवि हैं जिन्हें प्रतीकों और उपमानों को बदलने का प्रयास किया। वे सदैव ही नये उपमानों के अन्वेषण में लगे रहे। उनकी कविता '**कलगी बाजरे की**' में नवीन उपमानों का सफल चित्रण हुआ है। संस्कारी प्रतिभा के इस सहृदयी सर्जक के प्रकृति चित्रण बड़े ही सरल और मार्मिक हैं। तात्विक गूढ़ चिन्तन के स्थान पर कवि जीवन की सहजता को स्वीकार करता है, किसी भी प्रकार का वैचारिक संघर्ष यहाँ नहीं है, क्योंकि जीवन की प्रक्रिया चलायमान है, उसकी खूबसूरती आगे बढ़ने में ही है, ऐसा ही प्रकृति की हर वस्तु के साथ भी है, जो नाश के योग है, उसका चला जाना ही सही है, इसलिए कवि अपनी कविता '**बाबरी सुहेरी**' में कहता है–

'फूल को प्यार करो/पर झरे तो झर जाने दो/जीवन का रस लो
देहमन आत्मा की रसना से/पर जो मरे उसे मर जाने दो''[10]

कवि का प्रकृति के प्रति बड़ा ही कलात्मक सम्बन्ध है। वह थोड़े से शब्दों में अतिरेक भावनात्मक पहलुओं को चित्रित कर देता है। फूल की तरह ही अज्ञेय के काव्य में पौधे–पेड़–बेल आदि का भी रोचक चित्रण प्राप्त होता है। '**बेल सी वह मेरे भीतर**' नामक कविता में कवि ने अपनी प्रेमिका का प्रतीक बेल को बनाकर एक सुन्दर समन्वय की सृष्टि की है। अतः यह कविता कवि के व्यक्तित्व के साथ एकमय हो गयी है–

'बेल सी वह मेरी भीतर उगी है, बढ़ती है।
उसकी कलियाँ है मेरी आँखे,
कोंपले मेरी अंगुलियों में अंकुराती हैं/फूल–अरे यह दिल में क्या खिलता है?
सांस उसकी पंखुड़ियाँ सहलाती हैं/बाहें उसी के वलय में बंधी कसमसाती हैं।'[11]

यहाँ कवि और बेल का अस्तित्व भिन्न–भिन्न प्रतीत न होकर एकतान और एकमय हो गया है। इसे कवि का प्रकृति के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा ही कहा जा सकता है। इसके साथ ही पक्षियों का संसार भी वैविध्यपूर्ण और आकर्षक है। हारिल पक्षी मदमस्त होकर आकाश में उड़ा जा रहा है। वह तब तक नहीं थकेगा जब तक वह अपनी प्रेयसी से मिल नहीं जाता। उधर तेज गति से अकेला कीर उड़ा जा रहा है। मन्दिर के ऊपर कबूतरों का जोड़ा अपनी मंजुल–क्रिडा में व्यस्त है। कहीं दूर से चातकी की हूक, पपीहे की पी–पी और कोयल की कूहू–कूहू की आवाजें बड़ी ही मनोहारी हैं। अपनी रचना '**अरे यायावर रहेगा याद**' में कवि ने कहा भी है, '**मुझे मानवेत्तर प्राणियों में ठीक वैसी ही दिलचस्पी है, जैसा मानव शिशुओं में.....। कभी–कभी बहुत समय तक निश्चल बैठकर मैं एक–आध गोरैया को इतना आश्वस्त कर सका हूँ कि वह क्षण भर मेरे कंधें पर बैठकर फुर्र उड़ जाये, तोते, मोर, चकोर, कबूतर, तीतर आदि के अलावा लंगड़े कौए और चील के बच्चे तक मैंने पाले हैं।'**[12]

अज्ञेय ने पूरी तरह अनुभूतिक प्रकृति का वर्णन किया है, इसमें कहीं भी कल्पना नहीं है। इसलिए कवि का प्रकृति संसार बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। उनका गीता '**चाँदनी जी लो**' में शारदीया चाँदनी के सौन्दर्य और उसके माधुर्य को भाव तरल अभिव्यक्ति मिली है। कवि की प्रेयसी उससे आग्रह करती है कि वह भी शरद चाँदनी के माधुर्य को अपनी अंजुरी में भरकर वैसे ही पी लें जैसे प्रकृति ने पिया है, और वह शारदीया पूर्णिमा की हो तो इससे बेहतर किसी दृश्य की कल्पना करना सम्भव नहीं। ऐसे में यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि कवि की आँखें अपनी प्रिया की राह वैसे ही देख रही हैं जैसे चकोर चाँदनी को देखता है–

'कुहरा झीना और महीन, झर झर पड़े अकासनीय
उजली लालिम मालती गंध के डोरे मालती
मन डुबकी है हुलास ज्यों परछाई हो चोर की
तेरी बांट अगोरते ये आँखें हुई चकोर की''[13]

वर्ष में छः ऋतुओं का आना तय है, प्रत्येक ऋतु की अपनी खास विशेषता होती है। चूँकि कवि को प्रकृति से लगाव है, और वह परिवर्तित हो रही प्रकृति के प्रत्येक रूप को देखने में व्यस्त है। अतः कवि को प्रकृति की सभी ऋतुओं से प्रेम है। उनके काव्य में सभी ऋतुओं का विशेष रूप से चित्रण प्राप्त हो जाता है। हेमन्त ऋतु से सम्बन्धित उनका श्रेष्ठ प्रकृति प्रेम '**उन्मत**' नामक कविता में दिखाई देता है–

'सूंघ ली है सांस भर–भर/गंध मैंने इस निरन्तर
खुले जाते क्षितिज के उल्लास की/स्निग्ध सहलाती हुई सी
धूप यह हेमन्त की/आज मुझको चढ़ गयी है/यह अथाह अकूल अपलक
नीलिमा आकाश की/मत छुओ, रोको, पुकारो मत मुझे
जहाँ मैं हूँ वहाँ से मत उतारो/मुझे कुछ मत कहो''[14]

कवि इस प्रकृति की क्रोड़ में इतने लीन हैं कि वह उससे विलग होना ही नहीं चाहते। इसमें खुलते जाते क्षितिज का उल्लास है, स्निग्ध सहलाती हुई हेमन्त की धूप है, अथाह अकूल, अपलक आकाश की नीलिमा है, वह इन सबमें इतने तन्मय है कि वे प्रकृति और स्वयं के बीच कोई व्यवधान नहीं चाहते। **'भवन्ती'** नामक कविता में कवि ने सागर और पहाड़ के प्रति भी अपना अनन्य प्रेम व्यक्त किया है। वह पहाड़ों पर रहना रुचिकर समझते हैं, लेकिन फिर सागर की हलचल भी उन्हें अपनी ओर खींचती है। लेकिन पहाड़ छोड़कर वह जाना नहीं चाहते, अतः प्रकृति के दो रूपों के बीच उनकी दुविधा यह स्पष्ट करती है कि उन्हें प्रकृति से कितना आत्मिक लगाव है। चीड़ के वृक्षों से भी उनका लगाव देखने योग्य है, वे **'अरे मायावर रहेगा याद'** में चित्रित करते हैं, **'पृथ्वी माता के आकाश की ओर उठे हुए इन अभय प्रद हाथों के तले रहने का सौभाग्य जिसने पाया है, वही जानता है कि चीड़ वृक्षों को देखकर हृदय में कैसे अनिर्वचनीय रस का संचार हो आता है।''**[15]

चीड़ों की फैली और ऊँची भुजाएँ जैसे ऊपर चढ़ने की प्रेरणा देती है। इसके साथ ही अज्ञेय के काव्य में विभिन्न पेड़–पौधों (देवदार, काँकड़, पापड़, शीसम, नीम, बबूल, मेंहर्द, कुकुरमुत्ता) का सामान्यतः वर्णन प्राप्त होता है। इनमें से किसी की उपयोगिता, सौन्दर्यता, गुण तो किसी पेड़ द्वारा समाज पर व्यंग्य किया है। जब शिशिर ऋतु के आगमन से पेड़–पौधों की शाखाएँ ठण्ड के प्रकोप को सह नहीं पाती और वृक्षों के सभी पत्ते सूखने लगते हैं, ठण्डी हवाओं के कारण पेड़ झुलसे हुए प्रतीत हो रहे हैं, फूल और नयें अंकुर धरा पर आने का साहस नहीं कर पा रहें हैं, तो कवि धरा की ऐसी स्थिति को देखकर शिशिर ऋतु को विधुर तक कह देता है–

'सूनी–सूनी, खड़ी ठिठुरती पर्णहीन वृक्षों की पाँत
सिर पर काली शाखें मानो झुलस गये हो गात,
कहीं न फूल न पत्ते, अंकुर तक भी दीख न पाए
नहीं सिद्धि के सुखद फलों की स्मृतियाँ हमें चिढ़ाए
समः दुखी ओ विधुर शिशिर।''[16]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि मानव जीवन में आई उन कठिन परिस्थितियों को स्पष्ट करता है जो मानव के हौंसले को तोड़ देती है लेकिन कवि उन्हीं परिस्थितियों से लड़ने, पेड़ की तरह डटे रहने तथा धैर्यशीलता का संदेश देकर सम्पूर्ण मानव जाति को जागरुक करता है। इस धरा पर हिमालय पर्वत एक ऐसी अमूल्य निधि है जिसे समस्त विश्व में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, यह अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण सदैव चर्चित रहा है। अतः यह कवियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित न कर सकें, ऐसा कहना या सोचना असम्भव है। अज्ञेय भी नन्दा देवी हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य से रोमांचित हुए बिना न रह सके। कवि ने इस चोटी के विभिन्न अनुभवों एवं अनुभूतियों को वाणी दी है। पर्वत देवी, पर्वत चोटी के नीचे तरु रेखा से युक्त हरियाली पर रेवड़ का बिखराव, गडरिए की बांसुरी की तान उन रेवड़ों को दुलार से टेरती हुई, घास का फैला मैदान, विभिन्न स्रोत आदि मन मोहन चित्रों को अंकित करके उन्होंने सामाजिक चेतना को भी वाणी दी, तथा वैज्ञानिक प्रगति से भावी ध्वंस की ओर संकेत भी किया है–

'नंदा/बीस–तीस–पचास वर्षों में/तुम्हारी वन राजियो की
लुगदी बनाकर/हम उस पर/अखबार छाप चुके होंगे,
तुम्हारे सन्नाटे को चीथ रहे होंगे/हमारे धुंधुआते शक्तिमान ट्रक।''[17]

अतः कवि इस कविता के माध्यम से बताना चाहते हैं कि हमारी आधुनिक सभ्यता अपने अतिक्रमण के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट कर रही है। वह समाज को प्रकृति के मूल रूप के प्रति सजग करना चाहते थे ताकि कोई प्रकृति का अतिक्रमण करने से पहले सोच विचार कर कदम उठाए। प्रकृति के विविध रूप और कार्य व्यापार मानव को जीवन सत्यों का उपदेश भी दिया करते हैं। व्यक्ति चाहे तो प्रकृति से सत्यान्वेषण की दीक्षा ग्रहण कर सकता है। प्रकृति जीवन सत्यों को अपने विभिन्न रूपों और क्रियाओं द्वारा निरन्तर संकेतित करती रहती है, जो प्रकृति के भीतर छिपी हुई मूक ध्वनियों को सुन लेता है वह प्रकृति से उपदेशित होने लगता

है। चूँकि उसका महत्व सर्वांग रूप में उपस्थित होता है और वह प्रतिफल व्यक्ति को उपदेश देती है लेकिन वास्तव में उपदेश देने की स्थिति वहाँ मुखर व स्पष्ट है जहाँ प्रकृति स्वयं बोलकर मानव को जागरुक करती है–

'कहा सागर ने चुप रहो!/मैं अपनी अबाधता जैसे
सहता हूँ अपनी मर्यादा/तुम सहो!/जिसे बाँध–
तुम नहीं सकते/उसमें अखिन्न/बहो/मौन भी
अभिव्यंजना है/जितना तुम्हारा सच है/उतना ही कहो।'[18]

इस कविता में नदी, आकाश, पर्वत, झरना आदि को कवि ने उपदेश बना दिया है। प्रकृति द्वारा ऐसा मुखर उपदेश दिलाने की चेष्टा बहुत कम कवियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। लगभग ऐसी चेष्टा करने में अज्ञेय एक विरत कवि है। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में अपनी चेतना में प्रकृति के बिम्बों को अमिट छाप को अंकित किया है न ही किसी रूप, रंग की छाप है, न ही ध्वनि, गंध स्पर्श की, उनसे जुड़ी हुई सुख स्मृति की और न ही गहन व्यथा की छाप है। अतः यह छाप उनकी चेतना से हृदय में उतरकर प्रकृति से गम्भीर रूप से जुड़ जाने का स्पष्ट प्रमाण है।

निष्कर्ष :–

अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति का संसार अधिक वैविध्यपूर्ण रूप से चित्रित हुआ है। यह विविध रंगों, पशुओं, सागर, पहाड़, वनों, पर्वत, फूलों, ऋतुओं एवं खगों के कलरवों से भरी हुई एक प्राकृतिक दुनिया है। यहाँ हवा का झौका शालीनता से बहता है, पलाश के फूलों से कवि के मन में प्रणय की भावना उद्दीप्त होती है। जब बसन्त ऋतु का आगमन होता है तो सम्पूर्ण धरा उत्साहित होकर जैसे प्रकृति के स्वागत में खड़ी रहती है। पूरी प्रकृति प्रेम और नये दुलार की अथक भूख में जग पड़ती है, सम्पूर्ण धरा पर रोमांस छा जाता है। धरा के सौन्दर्य की सीमा तय नहीं हो पाती, प्रकृति का खिला और भरपूर रूप सभी को रोचकता और आकर्षण प्रदान करता है। यह उस जीवन प्रवाह की तरह है जो अनाहूत होती है और यह प्रकृति का बहाव उसे सर्वांग रूप से बहने देती है। कहीं कवि प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर एक नया जीवन प्राप्त करता है और कहीं गोचर में अगोचर के दर्शन करता है। मानवीकरण के रूप में प्रकृति के कितने ही भव्य चित्र अज्ञेय के काव्य में मिलते हैं, इसीलिए उन्होंने प्रकृति के मादक और मोहक चित्र भी अंकित किये हुए हैं। उनके प्रकृति चित्रण में निरीक्षण का सूक्ष्मता, कल्पना की लालित्य, अनुभूति की तरलता और दृष्टि की ताजगी जिसके फलस्वरूप प्रकृति के चित्र सजीव हो जाते हैं। अतः अज्ञेय का प्रकृति के साथ गहरा संवेदात्मक सम्बन्ध रहा है, इसीलिए उनके हृदय में प्रकृति के इतने रंग, रूप, स्पर्श और गन्ध समाहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. hindisamay.com-
2. डॉ. ओउम्प्रकाश अवस्थी – 'अज्ञेय' कवि, पृ.सं. 145, प्रकाशक–ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, संस्करण 1977
3. hindisamay.com-
4. अज्ञेय – पूर्वा पूर्वा, पृ.सं. 90, प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, दूसरा संस्करण 1969
5. संजय कुमार – अज्ञेय प्रकृति काव्य : काव्य प्रकृति, पृ.सं. 20, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995
6. डॉ. हरिचरण शर्मा – कवितायन, पृ.सं. 34, प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन जयपुर, संस्करण 2007
7. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना – हिन्दी के आधुनिक : प्रतिनिधि कवि, पृ.सं. 434 प्रकाशक–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,

			प्रथम संस्करण 1986
8.	डॉ. रमाकान्त शर्मा	–	छायावादोत्तर हिन्दी कविता, पृ.सं. 308, प्रकाशक–साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण 1970
9.	संजय कुमार	–	अज्ञेय प्रकृति काव्य : काव्य प्रकृति, पृ.सं. 25, 26,
10.	अज्ञेय	–	बावरा अहेरी, पृ.सं. 60, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, छठा संस्करण 2003
11.	संजय कुमार	–	अज्ञेय प्रकृति काव्यः काव्य प्रकृति, पृ.सं. 29
12.	अज्ञेय	–	अरे यायावर रहेगा याद, पृ.सं. 117, प्रकाशक–मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2001
13.	संजय कुमार	–	अज्ञेय प्रकृति काव्य : काव्य प्रकृति, पृ.सं. 92
14.	अज्ञेय	–	अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ.सं. 92, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पांचवां संस्करण 2008
15.	अज्ञेय	–	अरे यायावर रहेगा याद, पृ.सं. 85
16.	अज्ञेय	–	पूर्वा पूर्वा, पृ.सं. 37
17.	राजेन्द्र प्रसाद	–	अज्ञेय : कवि और काव्य, पृ.सं. 44, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978
18.	राजेन्द्र प्रसाद	–	अज्ञेय : कवि और काव्य, पृ.सं. 143, 144